खण्डः 1, अंकः 5 दिसम्बर 2018

संश्लेषण

डी सी आर सी मासिक पत्रिका

चुनावी लोकतंत्र

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
नागेन्द्र कुमार
शरद कुमार यादव

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
कुँवर प्रांजल सिंह
आशीष कुमार शुक्ल

© डीसीआरसी 2018

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण
मुख्य कथ्यः चुनावी लोकतंत्र

अनुक्रमिका i

संपादकीय ii

1. भारत में चुनावी लोकतन्त्रः एक संक्षिप्त परिचय – नीतेश राय 1–2
2. चुनावी लोकतंत्र तथा राजस्थान विधानसभा चुनाव 2018 : एक अध्ययन – निशा कुमारी 3–4
3. चुनावी लोकतंत्र और चुनाव सुधार – मोहिनी मित्तल 5–6
4. चुनावी चंदे में पारदर्शिताः चुनावी बॉन्ड स्कीम – जया ओझा 7–8
5. लोकतंत्र में मीडियाः माध्यम से सक्रिय भागीदार तक – चन्द्रशेखर ग्वाड़ी 9–11
6. चुनावी लोकतंत्र में महिलाएंः एक बदलता स्वरूप – रजनी 12–14
7. भारतीय राजनीति में महिला सहभागिता तथा सामाजिक सशक्तिकरण – राखी 15–16
8. चुनावी लोकतंत्र में महिलाओं का समावेशीकरणः भारत एवं अफ्रीका – राम किशोर 17–19
9. क्या भारत में चुनावी लोकतंत्र वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक है? – राहुल शर्मा 20–22

संपादकीय

विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका, संश्लेषण के पंचम अंक को प्रकाशित करते हुए हमें अत्याधिक प्रसन्नता हो रही है। शोध केन्द्र से संबंधित समस्त शोध ार्थियों, शिक्षार्थियों एवं विद्यार्थियों द्वारा समसामयिक विषय पर अपने सामूहिक लेखों द्वारा शोध वास्तविकताओं को प्रकट करने वाली यह एक विशिष्ट हिन्दी मासिक पत्रिका है। वर्ष 2018 का संश्लेषण का यह अंतिम अंक भी है।

वर्ष 2018 का दिसम्बर माह भारत की चुनावी राजनीति एवं लोकतंत्र पर मुख्यतः केन्द्रित रहा। 17वीं लोक सभा से पूर्व भारत के पांच राज्यों (राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, तेलंगना और मिजोरम) में विधानसभाओं के चुनावों ने जनता व मतदाता दोनों को लोकतांत्रिक राजनीति के माध्यम से अत्यंत प्रभावित किया। मुख्य राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के लिए ये चुनाव जहां आगामी लोक सभा चुनाव के लिए 'लघु लोक सभा 2019' के रूप में देखे जा रहे थे वहीं क्षेत्रीय दलों के लिए ये चुनाव उनकी लोकतांत्रिक अस्मिता से जुड गए थे। दोनों संदर्भों में दिसम्बर 2018 माह में पांच राज्यों के ये चुनाव भारत की परिवर्तनीय लोकतांत्रिक राजनीति में नए व्याकरण एवं समीकरण का प्रकटीकरण थे।

विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र ने 'चुनावी लोकतंत्र' विषय पर लेख आमंत्रित किये। दस उत्कृष्ट लेखों को सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख न केवल भारत के चुनावी लोकतंत्र के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं अपितु लोकतांत्रिक राजनीति के परिवर्तनीय वाद विषयों की महता को भी उदृत करने का प्रयास कर रहे हैं।

संश्लेषण के पंचम अंक के समस्त लेख मौलिक होने के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन से संबंधित आधारभूत बिंदुओं को भी प्रकट करते हैं। लेखकों के विचार स्वतंत्र चिंतन के परिचायक हैं तथा सम्पादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को संपादन के माध्यम से किसी भी प्रकार प्रभावित व परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। व्यक्तिगत लेखों में प्रस्तुत तथ्य एवं मत लेखकों की रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को प्रदृशित करते हैं।

संश्लेषण के पंचम अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम वर्ष 2019 के जनवरी माह के अपने प्रथम समसामयिक तथा महत्वपूर्ण अंक में और अधिक गुणवत्ता लाने का प्रयास करेंगे।

संपादक मंडल

बृहस्पतिवार, 24 जनवरी 2019

1

भारत में चुनावी लोकतन्त्रः एक संक्षिप्त परिचय

नितेश राय
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

चुनाव प्रतिनिधिक लोकतन्त्र का एक अभिन्न अंग है। यह न केवल चुनी हुई सरकार को लोकप्रिय बनाता है अपितु सरकार में लोगो के विश्वास को भी अभिलक्षित करता है। इन सबके बावजूद एक महत्वपूर्ण प्रश्न जो हमारे मन में आता है कि क्या चुनाव ही लोकतन्त्र में सर्वेसर्वा है ? हम जब भी लोकतन्त्र की बात करते है बहुत हद तक हम अपने विमर्श को चुनाव तक ही केन्द्रित रखते है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य इस बात को प्रकाशित करना है की लोकतन्त्र का अस्तित्व केवल सफलतापूर्वक अपने नेता का चुनाव करने तक ही सीमित नहीं है अपितु इससे कहीं बड़ा और गंभीर है।

भारत में जब भी लोकतन्त्र की बात होती है, सामान्यता यह माना जाता है कि भारत में लोकतन्त्र पश्चिम की देन है और यह आधुनिकता के साथ भारत में आया है। न केवल भारत में अपितु जितने भी पश्चिम के चिंतक रहे है अधिकतर ने यही माना है कि भारत में लोकतन्त्र का कोई अस्तित्व नहीं था।

यह लेख इस विचार को खंडित करते हुए यह दर्शाने का प्रयास करता है कि चुनावी लोकतन्त्र मात्र अपने मताधिकार का प्रयोग करना नहीं है तथा इसका प्रारम्भ हमें पश्चिम से न देखकर भारत में ही देखने को मिल सकता है। यह बात सत्य है कि आज हम जिस तरह के चुनावी लोकतन्त्र की बात आज के आधुनिक भारत में कर रहे है उस तरह का लोकतन्त्र प्राचीन भारत में नहीं था। उदाहरणस्वरूप सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन आदि साधन निश्चित रूप से आधुनिकता की ही देन है, परन्तु हमें यह समझना होगा कि लोकतन्त्र का तात्पर्य संवाद भी होता है, लोकतन्त्र में लोगों की सरकार के निर्णयों में भागीदारी भी होती है। प्राचीन भारत में संघ और समिति का कार्य किसी बिना किसी विवाद के स्वीकार्य है, जहाँ महत्वपूर्ण निर्णयों में लोग संवाद के द्वारा ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचते थे। वर्तमान संसद की तरह ही प्राचीन समय में परिषद कार्य करते थे। संघ की नीतियों के संचालन का उत्तरदायित्व परिषदों के पास होता था। लिच्छवि गणराज्य के परिषद में लगभग 5,000 सदस्य होने का उल्लेख मिलता है। इसका प्रमाण हमें प्राचीन सिक्कों और विदेशी यात्रियों के वर्णन में मिलता है। अमर्त्य सेन ने भी इस तथ्य का उल्लेख अपनी किताब "जीम ।तहनउमदजंजपअम प्दकपंद" में किया है।

हमें इस बात पर गर्व होना चाहिए कि हमने अपने आप को एक सफल लोकतान्त्रिक राज्य के रूप में, जो विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है, स्थापित किया है। भारत में चुनावी लोकतन्त्र ने विभिन्न

कठिनाईयों का सामना करते हुए स्वयं को एक सुदृढ़ लोकतान्त्रिक राज्य के रूप में स्थापित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात देश में अस्थिरता, विभाजनकारी शक्तियों का उदय तथा आपातकाल का संकट भी भारत में चुनावी लोकतन्त्र को कमजोर न कर सका। अपितु इसके विपरीत लोकतन्त्र स्वयं को पहले से कहीं दृढता के साथ स्थापित कर सका।

चुनावी लोकतन्त्र ने एक तरफ जहाँ लोकप्रिय और उत्तरदायी सरकार बनाने का कार्य किया है वहीं दूसरी ओर इसने कुछ विसंगतियो को भी जन्म दिया है, जो दिन–प्रतिदिन नए नए रूप में उभर कर सामने आ रही है। चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दल तरह तरह के हथकंडे अपना रहे है, जो लोकतन्त्र के लिए शोभनीय नहीं है। बाहुबल का प्रयोग, धन का दुरूप्रयोग, आपराधिक नेताओं का लोकतन्त्र में आधिक्य कहीं न कहीं इस बात का संकेत देते हैं कि हमारे चुनावी लोकतन्त्र की गाड़ी सही पथ पर अग्रसित नहीं हो रही है और हमे इसके विषय में गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। धर्म, जाति, वर्ग और प्रांत के आधार पर जो राजनीति हो रही है वो विभाजन के सिवा कुछ नहीं दे सकती है। राजनीतिक दल अपने चुनावी लाभ के लिए इन मुद्दो को अच्छी तरह से भुनाने में माहिर है।

पॉल ब्रास अपने किताब **"The production of Hindu – Muslim violence in contemporary India"** मे कहते है की धार्मिक दंगे अपने आप नहीं हो जाते अपितु उन्हे सुनियोजित तरीके से करवाया जाता है। जहा पर भी कोई एक समुदाय बहुलता में है वहाँ अल्पसंख्यक समुदाय को इस तरह से गुमराह किया जाता है जिससे की वो इस बात पर विश्वास कर ले की जो समुदाय बहुमत में है उससे अल्पसंख्यको को खतरा है। यह अल्पसंख्यक और बहुमत का बटवारा धर्म, जाति, वर्ग, प्रांत आदि के आधार पर मुख्यतः किया जाता है।

इन सब समस्याओं का उल्लेख करने का मेरा यह तात्पर्य कतई नहीं है कि हमारा वर्तमान का चुनावी लोकतन्त्र पूर्ण रूप से पतन की ओर जा रहा है। जैसा कि मैंने पहले कहा, भारत में लोकतन्त्र जब भी किसी समस्या में पड़ा है, इसने खुद को और मजबूती से स्थापित किया है। सभी राजनीतिक दल और लोग आज भी श्री अटल विहारी वाजपेयी की सरकार का उल्लेख करते है जिसने राजनीति का एक नया पैमाना स्थापित किया। प्रतिवर्ष बढ़ते हुए मतदाताओ की संख्या इस बात का प्रमाण है कि लोगों का विश्वास आज भी बना हुआ है।

भारतीय चुनावी लोकतन्त्र में जिन कमियों का वर्णन मैंने किया है, वे कामियां न्यूनाधिक, रूप में दुनिया के सभी चुनावी लोकतन्त्रों में निहित है। भारत ने जिस प्रकार अनेक विविधताओ को समाहित करते हुए खुद को एक सफल लोकतान्त्रिक राज्य के रूप में विश्व पटल पर खुद को स्थापित किया है , उसी तरह से इस राज्य को उपरोक्त विसंगतियो को दूर करके एक और उदाहरण पूरे विश्व को देना है !

भारत एक ऊर्जावान देश है जहाँ युवाओं कि संख्या सबसे अधिक है। बढ़ती शिक्षा की दर, लोगों में जागरूकता इस बात का संकेत देते है कि आने वाली चुनावी राजनीति में इन सब विसंगतियो को दूर करके एक साफ और मजबूत चुनावी लोकतन्त्र भारत में निश्चित ही स्थापित होगा।

♦♦♦♦♦

2

चुनावी लोकतंत्र तथा राजस्थान विधानसभा चुनाव 2018 : एक अध्ययन

निशा कुमारी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

चुनाव, लोकतंत्र का प्राण तत्व है। किसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में चुनाव, लोगों की सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में मतदाता मुख्य निर्धारक होते हैं तथा इस विश्वास के साथ अपने मत का प्रयोग करते हैं, कि उनके द्वारा चुनी गयी सरकार, सभी संभव तथा आवश्यक नीतियों के माध्यम से सभी को एक उत्तम जीवन तथा बेहतर भविष्य सुनिश्चित करने की दिशा में कार्य करेगी। शासन की लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सम्पूर्ण वैधता चुनावी तंत्र की क्षमता तथा कुशलता पर निर्भर करती है। अभी हाल ही भारत के पांच राज्यों– मध्य प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, मिजोरम तथा राजस्थान में विधानसभा चुनाव हुए। यह लेख राजस्थान के अजमेर जिले के पुष्कर विधानसभा के विशेष सन्दर्भ में मतदाता व्यवहार के अध्ययन का एक संक्षेप विवरण प्रस्तुत करता है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से पहला तथा जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान भारत का सातवाँ बड़ा राज्य है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में लगभग 7 करोड़ जनसंख्या निवास करती है जिसमें 52 प्रतिशत पुरुष तथा 48 प्रतिशत महिलाएं हैं। लगभग 69 प्रतिशत जनसंख्या सामान्य जाति, 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा 13 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से सम्बंधित है तथा 88 प्रतिशत हिन्दु, 9 प्रतिशत मुस्लिम तथा 1 प्रतिशत सिख तथा 2 प्रतिशत अन्य आबादी है। 2011 की जनगणना के अनुसार पुष्कर विधासभा क्षेत्र में 91.15 प्रतिशत ग्रामीण तथा 8.85 प्रतिशत शहरी जनसंख्या है तथा सामान्य जाति के 83 प्रतिशत जनसँख्या, अनुसुचित जाति 16.5 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति की 0.41 प्रतिशत जनसँख्या निवास करती है। पुष्कर की राजनीति में वर्चस्व रखने वाली कुछ महत्वपूर्ण जातियां– सामान्य जाति में ब्राह्मण (पराशर, गौंड, वैष्णव) रवाना राजपूत, अन्य पिछड़े वर्ग में जाट, गुज्जर, कुमावत. पिंडर, अनुसूचित जाति में माली, मेधवंशी, धनका, सरगरा, सिन्धी, भट, रेगर तथा अनुसूचित जनजाति में विशंवत मुख्य हैं।

राजस्थान की राजनीति पर मुख्य रूप से दो दलों का वर्चस्व रहा है– कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी। तथा इस दृष्टि से राजस्थान की राजनीति अन्य राज्यों से भिन्न है। 1952 से प्रथम विधानसभा चुनाव से लेकर पाँचवे विधानसभा चुनावो तक (1997) तक राजस्थान में कांग्रेस ने लगातार सरकार बनायी। 1977 में हुए छठे विधानसभा चुनाव में जनता पार्टी को विधानसभा तथा लोकसभा में भी भारी सीटें प्राप्त हुई थी। जनता दल को 200 में से 155 स्थान तथा कांग्रेस को 41 स्थान प्राप्त हुए थे। जनता दल ने पूर्ण बहुमत से भैरोसिंह शेखावत के मुख्यमंत्री नेतृत्व में सरकार बनायीं। 1980 में हुए सातवे तथा 1985 में हुए आठवें विधानसभा चुनाव में कांग्रेस दल का अधिपत्य रहा। यद्यपि 1990 में

नौवी विधानसभा के त्रिशंकु जनादेश ने गठबंधन सरकार का मार्ग बनाया तथा जनता दल और भारतीय जनता पार्टी के गठबंधन से भैरोसिंह शेखावत के नेतृव में एक बार पुनः गैर–कांग्रेसी सरकार बनी। 1993 में हुए विधानसभा चुनावों में भी कांग्रेस को आन्तरिक कलह का नुकसान हुआ तथा पुनः भैरोसिंह शेखावत के नेतृत्व में सरकार बनी। 1998 के चुनावों में कांग्रेस की पूर्ण बहुमत के साथ पुनः वापसी हुई तथा 2003 में हुए अगले चुनावों में बीजेपी को 60ः स्थानों के साथ राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। इसमें कांग्रेस को आन्तरिक गुटबाजी के कारण हार मिली। इसके उपरांत 2008 में हुए चुनावों में कांग्रेस, 2013 में हुए चुनावों में भारतीय जनता पार्टी तथा वर्तमान 2018 में हुए चुनावों में पुनः कांग्रेस की वापसी हुई। इस प्रकार प्रथम विधानसभा निर्वाचन से पंद्रहवी विधानसभा निर्वाचन के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि छठी, नवी, दसवीं, बारहवी तथा चौदहवी विधानसभा को छोड़कर कांग्रेस ने सर्वाधिक समय तक राज्य में सत्ता पर अपना वर्चस्व बनाए रखा।

जहाँ पिछले विधान सभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 59.82 प्रतिशत तथा कांग्रेस पार्टी को 42.83 प्रतिशत मत प्राप्त हुआ था। वही 2018 में हुए विधासभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 73 स्थान, कांग्रेस को 100 स्थान तथा अन्य को 26 स्थान प्राप्त हुए। इस परिवर्तन को समझने के लिए मतदाता व्यवहार को समझना महत्वपूर्ण है। इस लेख में जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह राजस्थान के अजमेर जिले के पुष्कर विधानसभा क्षेत्र में किये गये 500 सर्वेक्षण नमूनों पर आधारित है। एकत्रित आंकड़ें यह स्पष्ट करते हैं कि 40 प्रतिशत मतदाता मुद्दों को प्राथमिकता में रखकर अपने मत का निर्णय करते हैं। तथा 30 प्रतिशत मतदाता राजनीतिक दलों को प्राथमिकता देते हैं। राजनीतिक दल तथा राज्य सरकार से संतुष्टि तथा विधायक से संतुष्टि सम्बन्धी एकत्रिक आंकड़ों में पाया गया कि 55 प्रतिशत मतदाता भारतीय जनता पार्टी से संतुष्ट दिखाई दिए वहीं तत्कालीन राज्य सरकार से संतुष्टि सिर्फ 28 प्रतिशत ही थी। वह राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व पर सहमत दिखाई दिए। 'मोदी तुझसे बैर नही, वसुंधरा तेरी खैर नही' का नारा प्रमुखता से लोगों की चुनावी अभिव्यक्ति में बना रहा।

अतः यह तथ्य स्पष्ट करते है कि मतदाता तत्कालीन मुख्यमंत्री को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं देख पाया। जहाँ लोग उज्ज्वला योजना के तहत गैस–सिलेंडर प्राप्त करके संतुष्ट दिखे वहीं एल.पी.जी. के बड़े दामों के कारण वह इसके निरंतर प्रयोग में बाधा का अनुभव कर रहे हैं। साथ ही राजस्थान की जनता में वर्तमान राजनितिक दलों से कुछ मोहभंग की स्थिति भी दिखाई देती है जिसे उसके द्वारा कहे गए इस वाक्य से समझा जा सकता है कि "पहले चम्बल के डाकू आते थे, वे अमीरों का पैसा लूटते थे व लूट का हिस्सा गरीबों में बाँटते थे, परन्तु आजकल सरकारी डाकू आते हैं जिनके आगे भी पुलिस चलती है और पीछे भी। गरीबो को लूट रहे है और अमीरों का पेट भर रहे है।" – उपरोक्त स्थिति लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए चिंताजनक है। ऐसा लगता है कि इसी प्रवृत्ति के कारण राजस्थान में पिछले कई वर्षों से स्पष्ट द्विदलीय तथा कभी–कभी गठबंधन सरकार का अस्तित्व बना हुआ है। एक बार जनता कांग्रेस को अवसर देती है तो दूसरी बार भारतीय जनता पार्टी को अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। अतः राजस्थान में सत्ता परिवर्तन का मिथक दिखाई देता है।

♦♦♦♦♦

3

चुनावी लोकतंत्र एवं चुनाव सुधार

मोहिनी मित्तल
शौधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय

चुनावी लोकतंत्र से तात्पर्य है चुनावों पर आधारित प्रतिनिधि लोकतंत्र। एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें चुनाव के द्वारा लोग शासन व्यवस्था में भागीदारी के लिए अपने प्रतिनिधियों का चयन करते हैं।लोकतंत्र की जीवन्तता और गतिशीलता को बनाए रखने के लिए निष्पक्ष चुनाव आवश्यक है। स्वतंत्रता, समानता, अधिकार जैसे मूलभूत तत्व लोकतंत्र के प्रमुख स्तंभ हैं। लोकतंत्र में चुनावों का होना ही लोकतंत्र की शक्ति का एक लक्षण है, चुनाव द्वारा ही जनता का मत प्रकट होता है, जिसमें एक दो लोगों द्वारा सरकार नही चुनी जाती अपितु बहुमत की इच्छा का सम्मान होता है।

लोकतंत्र के सर्वांगीण विकास के लिए चुनावी एवं राजनीतिक लोकतंत्र के साथ साथ आर्थिक व सामाजिक लोकतंत्र भी आवश्यक है। चुनावी लोकतंत्र के सकारात्मक पक्ष के साथ साथ इसका दुरुपयोग भी कई बार देखने को मिलता है, जो वास्तविक लोकतंत्र के विकास में बाधक है जैसे फर्जी मतदान, मतदान केन्द्र पर कब्जा, प्रत्याशियों और मतदाताओं के साथ हिंसा, मतदाताओं को डरा धमकाकर वोट प्राप्त करने का प्रयास करना, लोक लुभावने वादों के माध्यम से वोट प्राप्त करने का प्रयास करना, राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण, भ्रष्टाचार में जन प्रतिनिधियों की संलिप्तता, काले धन का उपयोग, चुनावों में धन बल का प्रयोग, निर्धारित धन से अधिक धन खर्च करना, अज्ञात स्रोतों से चंदा लेना, अत्यधिक सब्सिडी देने या कर्ज माफी करना जिससे अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्त दवाब पडता है।

हालांकि इन सबसे भारतीय लोकतंत्र को बचाने तथा निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए अनुच्छेद 324 के अन्तर्गत चुनाव आयोग का गठन किया गया, किन्तु फिर भी राजनीति में अपराधीकरण की समस्या विद्यमान है, इसके लिए समय समय पर चुनावी सुधार हेतु भारत में कई समितियों का गठन हुआ जैसे – तारकुंड़े समिति, गोस्वामी समिति, वोहरा समिति, इंद्रजीत गुप्ता समिति, संविधान समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया। विभिन्न समितियों की अनुशंसा पर समय–समय पर चुनाव सुधार किए गए।

तारकुण्डे समिति का गठन 1974–75 में किया गया। इस समिति की प्रमुख सिफारिश यह थी कि एक ऐसा कानून होना चाहिए जिसके तहत सभी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों द्वारा अपने खातो, आय के स्रोतों और खर्चो के ब्योरो का पूरा हिसाब दिया जाए, यदि खाते में गड़बड़ी पायी जाती है तो इसे दंडनीय अपराध माना जाएगा।
चुनाव सुधार की दिशा में ही 1990 में दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में गोस्वामी समिति का गठन किया गया इसकी सबसे प्रमुख सिफारिश यह थी कि किसी भी व्यक्ति को दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों

पर चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जाए तथा निर्दलीय प्रत्याशियों की जमानत राशि बढ़ायी जानी चाहिए, ऐसे प्रत्याशी जो एक चौथाई मत भी प्राप्त नही कर पाए हों उनकी जमानत राशि जब्त कर ली जाए। वोहरा समिति ने राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण को रोकने की सिफारिश की।

1998 में इंद्रजीत गुप्ता की अध्यक्षता में चुनाव सुधार के लिए ही समिति का गठन किया गया जिसने सरकारी खर्च पर चुनाव का समर्थन करते हुए कहा कि कम धन वाले दलों के लिए समान अवसर स्थापित करने के लिए यह न्यायोचित, संवैधानिक और विधि सम्मत है। 2008 में दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी अनैतिक और अनावश्यक वित–पोषण को कम करने के उद्देश्य से आंशिक रूप में सरकारी खर्च पर चुनाव कराए जाने की सिफारिश की।

इन समितियों की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए समय समय पर चुनाव सुधार हुए, इन सुधारों को तीन चरणों में बांट सकते हैं–1996 से पहले के चुनाव सुधारों को प्रथम चरण के चुनाव सुधार माना जाता है – इसमें मतदान की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष की गयी, विधानसभा और लोकसभा चुनाव में नामांकन पत्रों पर प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि की गई, मतदान केन्द्र पर कब्जे की स्थिति में चुनाव रद्द करने का प्रावधान किया गया, मतदान पहचान पत्र में मतदाता के फोटो का प्रयोग किया गया, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के प्रयोग की बात की गई, प्रत्याशियों के नाम को सूचीबद्ध किया गया, शराब बिक्री पर प्रतिबंध का भी प्रावधान किया गया।

2010 के बाद चुनावी लोकतंत्र की गरिमा को बनाए रखने के लिए इसमें और सुधार किए गए, विदेशों में कार्य करने वाले भारतीयों को मत देने का अधिकार दिया गया, चुनावी खर्च की सीमा में वृध्दि की गयी, बड़े राज्यों में यह सीमा 70 लाख और अन्य राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में यह सीमा 16 से 40 लाख रखी गई, चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए जमानत राशि में वृद्धि की गयी, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में नोटा का विकल्प उपलब्ध कराया गया, मतदाता सूची में ऑनलाईन नामांकन की व्यवस्था की गई।

वर्तमान में भी चुनावों में और सुधार किए जाने हेतु प्रयास जारी हैं, चुनाव आयोग द्वारा निष्पक्ष चुनाव कराने, राजनीतिक अपराधीकरण को रोकने, आचार संहिता को सशक्त रूप में लागू कराने के लिए चुनाव आयोग को और सशक्त व सक्षम बनाने के लिए और अधिक दिए जाने की बात की जा रही है, मतदाताओं को चुनाव के प्रति जागरूक व उत्तरदायी बनाने के लिए 25 जनवरी को मतदाता दिवस घोषित किया गया है, एक देश एक चुनाव की मांग की जा रही है, अर्थात समय व धन की बचत हेतु केंद्र और सभी राज्यों में एक साथ चुनाव कराए जाए।

चुनावी लोकतंत्र के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व निष्पक्ष चुनाव हेतु समय–समय पर चुनाव सुधार आवश्यक है ताकि सभी के लिए सही मायने में एक व्यवस्थित, गरिमामय लोकतंत्र का विकास हो सके जिससे सबका सर्वांगीण विकास संभव हो सके।

♦♦♦♦♦

4

चुनावी चंदे में पारदर्शिताः चुनावी बॉन्ड स्कीम

जया ओझा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

चुनाव किसी भी प्रतिनिधि लोकतंत्र का सर्वप्रमुख पहलू है, लोकतंत्र का प्रमुख तत्व यही है कि इसमें राजनीतिक सत्ता में प्रत्येक नागरिक की समान रूप से साझेदारी रहती है। प्रत्येक व्यक्ति को एक निर्धारित आयु के बाद मतदान देने तथा चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त होता है। चुनाव किसी भी लोकतंत्र के लिए एक पर्व जैसा होता है इसमें एक श्रेष्ठ कल के लिए आम आदमी की आकांक्षाएं एवं अपेक्षाएं जुड़ी होती है। परंतु इस चुनावी प्रक्रिया में कुछ ऐसी चिंताएं भी जुड़ी हैं जो बीते 70 साल से लोकतंत्र के इस पर्व का स्वाद कड़वा कर देती हैं। इसमें सबसे बड़ी चिंता "भारत के आम चुनावों में धन के बढ़ते प्रभाव" की है, जिससे ना केवल चुनावी पारदर्शिता में कमी आ रही है, अपितु भ्रष्टाचार के लिए मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। प्रसिद्धि राजनीतिक विचारक लार्ड ब्राइस ने अपनी प्रसिद्ध कृति "मॉडर्न डेमोक्रेसीज" में विश्व के अनेक देशों में प्रजातंत्र की व्यवहारिक कार्य पद्धति का अध्ययन करते हुए प्रजातंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा धन के बढ़ते हुए प्रभाव को बताया।

राजनीतिक शासन तक पहुंचने के लिए एकमात्र रास्ता चुनाव लड़ना तथा बहुमत का समर्थन प्राप्त करना है। यह केवल योग्यता का प्रश्न नहीं है, अपितु चुनाव लड़ने के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। कार्ल एच ब्रेकर के शब्दों में "चुनाव जीतने के लिए किसी भी राजनीतिक दल को विधि निर्माण का एक ऐसा कार्यक्रम निश्चित करना पड़ता है जो मतदाताओं को आकर्षित करें। चुनाव जीतना एक व्यवसायिक उद्यम है, जिसमें चुनाव कोष के रूप में पूंजी विनियोग तथा कर्मचारियों के विशिष्ट संगठन की आवश्यकता पड़ती है। चुनाव कोष में लोग स्वार्थवश या निस्वार्थ भाव से चंदा दे सकते हैं, परंतु सबसे अधिकयोग सामान्य धनी व्यक्तियों या निगमों का होगा जो बदले में यह उम्मीद करेंगे कि जिस प्रकार के कानून वे बनवाना चाहेंगे संबंधित दल कम से कम उस बारे में उदासीन नहीं रहेंगे।" इस प्रकार धन चुनाव में एक अहम भूमिका निभाता है।

राजनीतिक दल धन का प्रयोग निर्वाचन क्षेत्र का दौरा करने वाली वाहनों की व्यवस्था, जुलूस व प्रदर्शन, लाउडस्पीकर व जनसभाएं, पर्ची व पुस्तिकाओं के प्रकाशन आदि में करते हैं। परंतु प्रश्न यह उठता है कि यह धन आता कहाँ से है? इसके लिए भी अनेक स्रोत हैः जैसे पार्टी सदस्यों का शुल्क (पार्टी सदस्यता), उद्योगों का संचालन करने वाली कंपनियां, जनता से प्राप्त चंदा, गुप्त धन या काला धन, विदेशी सरकारों से प्राप्त धन आदि। यूं तो चंदा देना आम बात है परंतु वह चंदा कौन दे रहा है, कितना दे रहा है, किसको दे रहा है? यह प्रश्न हर चुनाव में उठते रहे हैं। जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 के तहत कई ऐसी बातें हैं, जैसे एक सीमा जिसके ऊपर कोई खर्च या व्यय नहीं कर सकता, या जितना व्यय हुआ है उसका ब्यौरा चुनाव आयोग को दिया जाए परंतु इसके बाद भी राजनीतिक धन में पारदर्शिता का प्रश्न धृढ रहा है। इसलिए केंद्र सरकार द्वारा फरवरी 2017–18 के आम बजट

में चुनावी चंदे के लिए "चुनावी बॉन्ड स्कीम " की घोषणा की गई। इस बॉन्ड के द्वारा राजनीतिक दलों को चंदा देने की बात कही गई, इस बॉन्ड से ना केवल काले धन पर रोक लगेगी अपितु भ्रष्टाचार में भी कमी लाई जा सकती है। भारत ऐसा पहला देश है जहां चुनावी विधि को पारदर्शी बनाने के लिए इस बॉन्ड का प्रयोग किया गया है। चुनावी बॉन्ड की कुछ विशेषताएँ:
यह बॉन्ड बेयरर चेक जैसे होंगे, राजनैतिक दल इस बॉन्ड को अपने खाते में भुना सकते हैं।

यह बॉन्ड ब्याज मुक्त होगा इस बॉन्ड को कोई भी नागरिक, कंपनियां,या संस्था खरीद सकेंगे।
यह बॉन्ड स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के विशेष शाखा में उपलब्ध होंगे। चुनावी बॉन्ड के तीन पक्ष हैं– पहला पक्ष है कि दानदाता जो राजनीतिक दलों को चंदा देना चाहते हैं। दूसरा पक्ष, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दल। तीसरा पक्ष, देश का केंद्रीय बैंक 'भारतीय रिजर्व बैंक'।

प्राधिकृत बैंकों के द्वारा इस बॉन्ड की बिक्री की जाती है, बॉन्ड में दानदाता का नाम नहीं होगा, यह धन बैंकिंग तंत्र के द्वारा राजनीतिक दलों को पहुंचेगा। इससे यह सुनिश्चित हो सकेगा की राजनीतिक प्रणाली में केवल वही धन पहुँचे जिस पर कर का भुगतान कर दिया गया हो। इस प्रकार इस बॉन्ड के द्वारा ना केवल चुनावी चंदों में पारदर्शिता आएगी अपितु इससे भ्रष्टाचार में भी कमी आएगी, साथ ही धन का दुरुपयोग होने से बचाया जा सकेगा। हालांकि चुनावी बॉन्ड भी आलोचनाओं से अछूता नहीं रहा है, महासचिव सीताराम येचुरी का कहना है कि राजनीतिक दलों के चंदे को पारदर्शी बनाने के नाम पर चुनावी बॉन्ड के द्वारा काले धन को सफेद धन में परिवर्तित कर दिया जाएगा जो अर्थव्यवस्था व लोकतंत्र दोनों के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

येचुरी का मानना है कि, चुनावी बॉन्ड के जरिए विदेशों से मिलने वाले चंदे को वैध बनाने के लिए सरकार ने विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम में भूतलक्ष्यी प्रभाव से लागू करने के लिए संशोधन किया है, इससे कोई भी विदेशी नागरिक कंपनी या निकाय किसी भी भारतीय राजनीतिक दल को असीमित चंदा दे सकेगा, इसमें चंदा देने वाले और लेने वाले किसी भी व्यक्ति या संस्था की पहचान को सार्वजनिक करना अनिवार्य नहीं है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि चुनावी बॉन्ड से छोटे दलों का अंत हो जाएगा क्योंकि चुनावी बॉन्ड में यह कहा गया है कि चुनावी बॉन्ड वही दल पा सकते हैं जिन्होंने पिछले चुनाव में कम से कम एक फ़ीसदी वोट प्राप्त किया हो। इन आलोचनाओं के बाद भी यह कहा जा सकता है कि चुनावी बॉन्ड पारदर्शिता को बढ़ाने में एक अहम भूमिका निभा सकता है। यह छोटा सा ही परंतु महत्वपूर्ण कदम है, यह पारदर्शी चुनावी प्रक्रिया को सुनिश्चित कर सकता है साथ ही भ्रष्टाचार को कम करने के लिए एक मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

♦♦♦♦♦

5

चुनावी लोकतंत्र में मीडियाः माध्यम से सक्रिय भागीदार तक

चन्द्रशेखर ग्वाड़ी
बुलेटिन सम्पादक, डी डी न्यूज़

चुनावी लोकतंत्र में जहां मतदाता सर्वशक्तिमान है, मीडिया इस शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग सुनिश्चित कर सकता है और प्रायः करता भी है। मीडिया परम्परागत रूप से निर्वाचित और निर्वाचक के बीच उस कड़ी की भूमिका का निर्वहन करता आया है, जिससे संवादहीनता, संशय और संदेह से आगे बढ़ कर सत्यता और स्पष्टता स्थापित करने में सरलता हुई। भारत में, जहां निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव देश के सशक्त लोकतंत्र का आधार हैं, आज मीडिया लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका में है। चुनाव आयोग, राजनीतिक दल, उम्मीदवार, मतदाता या प्रशासन – निर्वाचन प्रक्रिया के हर भागीदार का किसी न किसी रूप में मीडिया से निरन्तर सरोकार रहता है, जिससे अंततः लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सफल परिणति सुनिश्चित होती है।

गत कई वर्षों से चुनाव आयोग मतदाता जागरुकता के लिए विशेष अभियान चलाता आ रहा है। जन संचार के विभिन्न माध्यमों पर चलने वाले इन अभियानों से जहां जनमानस में एक–एक वोट के महत्व को लेकर नई जागरुकता का प्रसार हुआ है, वहीं, युवाओं की भागीदारी भी नए स्तर पर है। भारत में युवा मतदाता बड़ी संख्या में हैं। युवा बढ़ चढ़ कर चुनावी प्रक्रिया का हिस्सा बनें, इसके लिए भी चुनाव आयोग शहरों से लेकर गांवों तक विशेष मीडिया अभियान चलाता है। इस के साथ साथ वर्ग केन्द्रित मीडिया अभियान चलाए जाते हैं, जिससे महिलाएं या नौकरी पेशा वाले लोग भी वोट डालने के अपने अधिकार के महत्व को समझें और चुनावी प्रक्रिया को लेकर उदासीन न रहें तथा उत्साह के साथ मतदान केन्द्र तक पंहुच कर मताधिकार का प्रयोग करें। हर नए चुनाव में मतदान प्रतिशत के नए स्तर पर पंहुचने का बड़ा श्रेय इन प्रभावी और वर्ग केन्द्रित मीडिया अभियानों को भी जाता है।

आज चुनावी परिदृश्य में मीडिया केवल एक माध्यम न रह कर स्वयं एक सक्रिय भागीदार बन गया है, विशेष रूप से जनमत निर्माण के संदर्भ में। मीडिया उन सूचनाओं और विषयों को मतदाताओं और आम जनता तक पंहुचाता है जो चुनाव प्रक्रिया की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक हैं। इस प्रकार मीडिया किसी विषय, व्यक्ति, व्यक्तित्व या उत्पाद विशेष पर लोगों के दृष्टिकोण या सोचने के तरीके को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। केवल इतना ही नहीं, यह उन विषयों को भी चर्चा के केन्द्र में ले आता है जो प्रथम दृष्टि में महत्वपूर्ण भी नहीं लगते या ख़बरों के ज्वार में कहीं खो से जाते हैं। ऐसे में संचार के माध्यम केवल सूचना देने, मनोरंजन करने या जागरुकता के प्रसार की भूमिका तक ही सीमित नहीं रह गए हैं, अपितु जनमानस को झकझोरने, प्रश्न करने और निर्णय लेने के लिए तैयार करने में भी सहायता करते हैं।

आज जब चुनावों में राजनीतिक दल, राजनेता या विभिन्न समूह और संगठन जाति, धर्म, सम्प्रदाय या

क्षेत्रवाद की बात करते हैं, तो ये मीडिया ही है जो प्रश्न करता है और मतदाताओं के हित के असल विषयों को चर्चा के केन्द्र में लाता है। मीडिया उन विषयों की चर्चा के औचित्य और मंशा पर भी सवाल करता है जो जनरुचि के मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए उठाए जाते हैं या फिर चुनाव अथवा जनहित की दृष्टि से अप्रासंगिक हैं। 21वीं सदी के प्रारंभ होने से अब तक के चुनावों पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि कैसे मीडिया की सक्रियता चुनावी अभियानों में नई गति और नई ऊर्जा का संचार करती है। 'गरीबी हटाओ, इंदिरा लाओ, देश बचाओ', 'जब तक सूरज चांद रहेगा, इंदिरा तेरा नाम रहेगा', 'जब तक रहेगा समोसे में आलू, तब तक रहेगा बिहार में लालू', 'मंदिर वहीं बनाएंगे', 'जात पर न पात पर, मुहर लगेगी हाथ पर', 'कांग्रेस का हाथ, ग़रीबों के साथ', 'अबकी बारी, अटल बिहारी', 'जांचा, परखा, खरा', 'अबकी बार, मोदी सरकार', 'सबका साथ, सबका विकास', ये सब केवल नारे ही नहीं थे, बल्कि राजनीतिक दलों और नेताओं की दूरदर्शिता और कार्यशैली की वो झलक थे, जो मीडिया के विभिन्न माध्यमों से जन जन के बीच पंहुचे, जनमानस पर अंकित हुए और भारतीय राजनीति में नए अध्याय लिखे गए।

चाहे प्रिंट मीडिया हो, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो, सोशल मीडिया हो या फिर न्यू मीडिया हो, गत 20–25 वर्षों में मीडिया का अभूतपूर्व गति से विकास और प्रसार हुआ है। तकनीक के उद्भव ने न केवल मीडिया को जन जन तक पंहुचाया है, बल्कि मीडिया का लोकतांत्रिकरण भी किया है। आज मीडिया तक केवल चुनिंदा लोगों की पंहुच नहीं है, बल्कि हर कोई सरलता से जनसंचार के विभिन्न माध्यमों तक पंहुच सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी और दूरसंचार क्रांति ने स्मार्टफ़ोन्स के रूप में हर हाथ में अपने अपने व्यक्तिगत संचार माध्यम थमा दिये हैं। सरल शब्दों में कहा जाए जो आज मीडिया उन को भी नई आवाज़ देने का काम कर रहा है जिनकी आवाज़ न तो कभी सुनाई ही पड़ती थी और होती भी थी तो भीड़ में कहीं गुम हो जाती थी। इंटरनेट का सिर्फ दायरा और स्पीड ही नहीं बढ़ी है बल्कि सर्व साधारण की ताक़त भी बढ़ी है और इस ताकत ने सत्तासीनों और सत्ताकांक्षियों को पहले से अधिक सचेत और सतर्क भी कर दिया है। राजनेता क्या करते हैं, क्या कहते हैं से लेकर, उन्हें क्या कहना चाहिए और क्या करना चाहिए, इस सब पर हर क्षण जनता की नज़र है।

लोगों की क्या अपेक्षाएं हैं, क्या आकांक्षाएं हैं, वे किन बातों से संतुष्ट हैं और कौन से विषय उन्हें चिंतित कर रहे हैं, वे जब चाहे इन सब पर बात कर सकते हैं और अपने विचारों को अपने नेताओं या सरकारों तक पंहुचा सकते हैं। पहले जहां, मीडिया ही किसी विषय को उठाने की पहल करता था अब लोग स्वयं विभिन्न विषयों पर संवाद प्रारंभ कर सकते हैं, जो बाद में मुख्यधारा के सवाल बन कर प्रमुख मीडिया में भी छा जाते हैं। मीडिया क्रांति और न्यू मीडिया के उद्भव के परिणामस्वरूप अब खुद मीडिया की एकछत्रता को भी चुनौती मिलने लगी है।

कौन से विषय पर चर्चा होनी है अब ये सिर्फ़ बड़े मीडिया घरानों के समाचार कक्षों में बैठे तथाकथित महान सम्पादक ही तय नहीं कर सकते, अपितु मामूली नौकरी पेशे वाले या जीवन की रोज़मर्रा की कसरत में उलझे लोग भी जन हित के विषयों को व्यापक चर्चा या संवाद के लिए आगे बढ़ा सकते हैं। हाल के वर्षों में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई ऐसी मुहिमों और आंदोलनों के उदाहरण हमारे समक्ष हैं, जिनमें जनाक्रोश और जनाकांक्षाओं को मीडिया के लोकतांत्रिकरण के चलते नई धार मिलने में आसानी हुई।

वर्ष 2008 में विश्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार विकासशील देशों में सक्षम, प्रतिक्रियाशील और उत्तरदायी सरकारों के लिए जनमत एक महत्वपूर्ण कारक है। जनमत निर्माण में मीडिया की महती भूमिका को समझते हुए सरकारें और शासन चलाने वाले अधिक संवेदनशील होते या कम से कम ऐसा करने का प्रयास करते प्रतीत होते हैं। मीडिया की सुलभता और लोकतांत्रिकरण ने नीति निर्माण और कार्यक्रम क्रियान्वयन में जनता की भागीदारी भी बढ़ाई है। नीति निर्धारक जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग न केवल अपने निर्णयों को आम जनता तक पंहुचाने के लिए करते हैं बल्कि आगामी नीतियां और योजनाएं जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप हों, इसके लिए इन्हीं माध्यमों से जनसुझाव और प्रतिक्रियाएं भी आमंत्रित करते हैं।

हालांकि, नई क्षमताओं और विस्तार के साथ नए दायित्व भी आते हैं। कई बार मीडिया द्वारा ही अपने प्रभाव के दुरुपयोग और ग़ैर ज़िम्मेदार व्यवहार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। चुनावों के दौरान 'पेड–न्यूज़' या उसके बाद 'फेक–न्यूज़' का चलन चिंता पैदा करता है। मूल्यों और नैतिकता पर निजी स्वार्थ हावी होना और व्यापक हित के प्रति उदासीनता का भाव इस का मुख्य कारण दिखाई देता है। मीडिया की निष्पक्षता उसका सबसे बड़ा हथियार है और हितसाधन के लिए गठजोड़ों में शामिल होना आत्मघाती। बदलते देश और परिवेश में जहां, मीडिया की भूमिका बदल गई है, अभूतपूर्व रूप से वृहद हो गई है, लोकतंत्र में भागीदारी और जवाबदेही सुनिश्चित करने में मीडिया एक नए अवतार में है। ऐसे में पहले से अधिक ज़िम्मेदार, जवाबदेह और स्वतंत्र मीडिया समय की मांग है।

♦♦♦♦♦

6

चुनावी लोकतंत्र में महिलाएं– एक बदलता स्वरूप

रजनी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

चुनावी लोकतंत्र में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो प्रतीत होता है, कि स्त्रियों की स्थिति एक लंबे समय से विवाद का विषय रही है। हमारी मौलिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को सुख, संपत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। आज भारतीय नारी देश के विकास में भी अग्रणी भूमिका निभा रही है क्योंकि आज की नारी की तुलना उस नारी से नहीं की जा सकती जो आज से कुछ वर्ष पहले तक संसार की संपूर्ण लज्जा को अपने घूँघट में समेटे हुए अपना जीवन व्यतीत कर रही थी।

समकालीन युग में चुनावी लोकतंत्र

समकालीन युग जहाँ चुनावी लोकतंत्र अपनी उच्चता को प्राप्त किए हुए है, ने महिलाओं की भागीदारी को भारतीय समाज की सांस्कृतिक व साहित्य में परिवर्तन करते हुए इस प्राचीन से मध्य और मध्य से आधुनिक युग तक आते–आते इस परिस्थिति को ही परिवर्तित कर दिया। 1962 में जहाँ महिलाओं की भागीदारी चुनावी लोकतंत्र के रूप में 19.7 प्रतिशत थी तो वहीं अभी हाल ही में हुए चुनावी लोकतंत्र में महिलाओं की 74.66 प्रतिशत भागीदारी को दर्शाते है। उदाहरणस्वरूप चुनावी लोकतंत्र में 2016 में असम, केरल, पुदुचेरी, तमिलनाडु, और पश्चिम बंगाल वही 2017 में उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, गोवा, पंजाब, और मणिपुर, इसके अंतिम महिनों नवंबर–दिसंबर में गुजरात और हिमाचल प्रदेश में व 2018 में राजस्थान, मध्यप्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, नागालैंड, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम, कर्नाटक इत्यादि में होने वाले चुनावों में महिलाओं की भागीदारी पुरूषों के स्तर तक आने में सफल रही है। जिसका कारण भारत में चुनावी लोकतंत्र की प्रवृत्ति का प्रबल होना है। इस लोकतंत्र के माध्यम से होने वाले चुनाव ने आज के समय में महिलाओं को सशक्तिकरण की ओर उन्मुख किया है, जहाँ वे शासन व निर्णय–निर्माण को पूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

यहाँ शक्तिशाली महिलाएं भारतीय राजनीति की कोई अजनबी नहीं हैं। भारत के पहले प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू की बेटी इंदिरा गांधी, अपने आप में एक दुर्जेय राजनेता, पहली बार 1966 में प्रधानमंत्री बनीं और कुल पंद्रह (गैर–असमान) वर्षों के लिए पद पर रहीं। आज, कई प्रमुख महिलाएँ भारत के राज्य–स्तरीय राजनीतिक परिदृश्य, जिनमें मायावती, बहुजन समाज पार्टी की नेता और पश्चिम बंगाल की प्रमुख मुख्यमंत्री ममता बनर्जी शामिल हैं। दिसंबर 2017 तक, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष, देश की प्रमुख विपक्षी पार्टी, सोनिया गांधी (इंदिरा की बहू) के अलावा कोई नहीं थी। इन हाई–प्रोफाइल उदाहरणों के बावजूद, समकालीन भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका कहीं अधिक जटिल है। भारत को स्वतंत्रता मिलने के सात दशकों के बाद भी, महिलाओं को राज्य

और राष्ट्रीय चुनावों में राजनीतिक उम्मीदवारों के रूप में कमजोर रूप से प्रस्तुत किया गया है। हालांकि इनमें देश की लगभग आधी आबादी शामिल है, लेकिन महिलाएं संसदीय उम्मीदवारों के केवल एक–बारहवें और अंतिम–विजेता के दसवें हिस्से में आती हैं। फिर भी भारत की चुनावी प्रणाली के ऊपरी क्षेत्रों में राजनेताओं के रूप में उनके व्यापक अवरोहण के बावजूद, महिलाओं ने मतदाताओं के लिए काफी प्रगति की है। यहां तक कि महिला उम्मीदवारो के रूप में महिलाओं के स्तर में वृद्धि हुई है, महिला मतदाता की भागीदारी बढ़ी है। आज, ज्यादातर राज्यों में, महिला मतदान पुरुषों की तुलना में अधिक है– रूढ़िवादी, पितृसत्तात्मक समाज में कोई छोटा–मोटा करतब नहीं। महिलाओं के इस चुनावी लोकतंत्र को 2018 में 1992 की तुलना में 'यर ऑफ द वुमन' की संज्ञा दी गई है जिसका कारण पुरूषों की तुलना में महिलाओं की भागीदारी की अधिक होना है।

भारतीय चुनावों में महिलाओं के वोट की प्रकृति के बारे में राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (छमै) ने अब तक तीन अवलोकन किए हैं। पहला 1990 के दशक में अन्य हाशिए के समूहों के साथ महिलाओं के बीच भागीदारी के बारे में है। दूसरा अवलोकन अखिल भारतीय स्तर पर महिला मतदाताओं के बीच कांग्रेस के लिए एक समग्र लिंग–लाभ के बारे में है। और तीसरा महिला मतदाताओं के बीच समान–लिंग के नुकसान के बारे में है।

2014 के चुनावों में वोट के लिंग पैटर्न ने दो स्तरों पर इसे जटिल बना दिया। पहले स्तर पर, यह इन चुनावों में महिला मतदाताओं में वृद्धि के बारे में है। जिसमें अखिल भारतीय स्तर पर समग्र मतदाता मतदान (58 से 66 प्रतिशत) में उल्लेखनीय वृद्धि की पृष्ठभूमि में, पुरुष और महिला मतदाताओं के बीच लैंगिक अंतर (67 पर पुरुष) और 66 प्रतिशत पर महिलाओं के बीच लैंगिक अंतर का उल्लेखनीय समापन है।

जहाँ महिलाएं अभी भी कम दरों पर चुनाव लड़ रही हैं और जीत रही हैं, वहीं सामान्य महिला मतदाता भारत के लोकतंत्र में तेजी से बढ़ती भूमिका निभा रही हैं। 2014 में, कुल मिलाकर मतदाता ने रिकॉर्ड में उच्च प्रदर्शन कियाः मोदी और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को चुनाव में पात्र मतदाताओं के 66. 4 प्रतिशत मतदाताओं ने वोट डाला।

यह 2004 और 2009 के चुनावों में देखी गई भागीदारी के स्तर से एक महत्वपूर्ण उछाल था, जब मतदान 58 प्रतिशत के आसपास स्थिर हो गया था। देश के व्यापक मतदाता जुटाने के बीच, कम पर्यवेक्षकों ने मतदान में लिंग अंतर की ऐतिहासिक संकीर्णता को देखा गया। 1967 में, महिला मतदान पुरुष मतदान में 11.3 प्रतिशत अंकों से पिछड़ गई। 1984 (इंदिरा गांधी की हत्या के बाद एक विसंगतिपूर्ण चुनाव) के अपवाद के साथ, 2004 के चुनावों के दौरान पुरुष–महिला मतदान की खाई एकदम स्थिर रही। फिर भी 2004 और 2009 के बीच, पुरुष और महिला मतदान के बीच 8.4 प्रतिशत अंकों का अंतर लगभग आधे से 4.4 प्रतिशत अंक तक गिर गया, हालांकि कुल मिलाकर मतदान में शायद ही कोई बदलाव हुआ है।

बाद के 2014 के चुनाव में, भारतीय पुरुषों का मतदाता लाभ का रिकॉर्ड सिर्फ 1.8 प्रतिशत अंक के साथ अपने सबसे कम अंतर पर खड़ा था। वास्तव में, सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से आधे

में, महिला मतदान वास्तव में पुरुष मतदान से आगे निकल गया। यह अभिसरण केवल राष्ट्रीय चुनावों का एक उत्पाद नहीं है। भारत के 30 राज्यों में से 23 के लिए, सबसे हालिया राज्य विधानसभा चुनाव (2012 और 2018 के बीच आयोजित) में महिला मतदान से अधिक है, जिसके लिए लिंग–विशिष्ट के डेटा को केंद्रित किया गया है। इसका मतलब यह नहीं है कि पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाएं वोट करती हैं, पुरुष अभी भी महिलाओं को मतदाता पंजीकरण रोल और सामान्य आबादी में पछाड़ते हैं। हालाँकि, महिला मतदाता पंजीकरण में वृद्धि महिला मतदाता पंजीकरण में वृद्धि से प्रेरित नहीं है; इसके विपरीत, पारी उन लोगों के बीच अधिक से अधिक महिला मतदान का परिणाम है जो पहले से ही पंजीकृत हैं। देश भर में, महिला मतदान लाभ (पंजीकृत मतदाताओं के बीच) राष्ट्रीय चुनावों की तुलना में राज्य में बड़ा हो जाता है। हालांकि, दोनों प्रकार के चुनावों के लिए, राज्यों का एक ही समूह महिला मतदान में सबसे बड़ी बढ़त हासिल करता है। उदाहरण के लिए, भारत के कुछ सबसे गरीब राज्य, जैसे बिहार और ओडिशा, एक स्पष्ट महिला लाभ का प्रदर्शन करते हैं, जबकि गुजरात, कर्नाटक और महाराष्ट्र के अधिक समृद्ध राज्यों में पुरुष महिलाओं की तुलना में अधिक आवृत्ति के साथ अपने मतपत्र डालते हैं।

2014 के आम चुनाव के आंकड़ों से महिला उम्मीदवारों की व्यापकता और महिला मतदान के बीच कोई स्पष्ट संबंध नहीं है। लिंग अनुपात और मतदान के बीच एक मामूली, सकारात्मक संबंध है, आबादी वाले क्षेत्रों के रूप में इनफ़ॉगर जो अधिक से अधिक लिंग समानता का प्रदर्शन करते हैं, उच्च मतदान को देखते हैं, लेकिन यह पुरुष और महिला मतदाताओं के मतदान दर के लिए सही है। महिलाओं के मतदान प्रतिशत में वृद्धि के पीछे मौजूद सटीक कारकों के बावजूद, मतपेटी पर बढ़ती महिला भागीदारी भारत की घरेलू राजनीति में एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।
निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण अब परिवर्तन की ओर उन्मुख हुआ है। जहाँ पर्दा प्रथा और घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर चुनावी लोकंतत्र को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाने की ओर अग्रसर है। यह प्रशंसनीय है कि 2019 तक, कि महिला का टर्नआउट पुरूषों की तुलना में सकारात्मक हो सकता है।

♦♦♦♦♦

7

चुनावी राजनीति में महिलाओं की सहभागिता तथा सामाजिक सशक्तिकरण

राखी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय समाज में महिलाओं की वर्तमान स्थिति का आंकलन इनके सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों पर इनके द्वारा किये गये विकास तथा उससे उनके जीवन स्तर में आये परिवर्तन से जुड़ा है। यही मापदंड भारतीय संविधान में भी महिलाओं को समानता देने के लिए किये गये प्रावधानों में भी दिखते हैं। इससे सामाजिक स्तर से बढ़कर राजनीति तथा नीति निर्माण प्रक्रिया में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जा सकी है। यद्यपि 1952 के आम चुनाव में मतदाता के रूप में इनकी भागीदारी 38.8 प्रतिशत, 1942 में 46.63 प्रतिशत, 1984 में 56.60 प्रतिशत से बढ़कर 2019 के चुनाव में 66.4 प्रतिशत हो गयी है।

समय के साथ साथ महिला तथा पुरुष के मध्य का अंतर कम हुआ है परन्तु यह अभी भी संतोषजनक नहीं है। इस परिवर्तन का कारण वर्तमान में इनके आर्थिक तथा सामाजिक जगत में बढती भागीदारी, शिक्षा, व्यवसाय के प्रति बढती जागरूकता तथा राजनीतिक दलों का इन विषयों के प्रति बढ़ते झुकाव ने इनको राजनीतिक जगत में एक नई पहचान दिलाने में सफलता प्राप्त की है। इस परिवर्तन का आधार 1973 में संपादित श्ज्वूंतके म्ुनंसपजलश रिपोर्ट जिसने महिलाओं को पारिवारिक तथा स्वास्थ्य विषयों से हटकर एक व्यक्तिगत पहचान देने की मांग उठाई। यही भारतीय राजनीति में महिला सहभागिता के लिए एक सकारात्मक मोड़ साबित हुआ। राजनीतिक दलों ने इस अवसर को चुनावी समय में मतदाताओं के लुभावन के अवसर के रूप में प्रयोग किया।

राजनीतिक दलों ने अनेक विषयों पर समय के साथ रूचि दिखानी आरंभ कर दी है। 1990 के दशक से कुछ विषय सदैव दलों के चुनावी वायदों का आधार बनते आ रहे है भारतीय जनता पार्टी ने इस दशक में मातृत्व के रूप में नारीत्व को पहचान दिलाई, जिसमें इनके सामाजिक–आर्थिक स्तर में सुधार हेतु चुनावी घोषणापत्र में पति की सम्पत्ति में समान साझेदार बनाने की मांग उठाई, पारिवारिक न्यायालयों में महिलाओं को न्यायधीश के रूप में स्थान देकर अधिक शक्तिशाली बनाना, समान कार्य के लिए समान वेतन देना, ग्रामीण महिलाओं को रोजगार देने के लिए 100 करोड़ की वार्षिक कुटीर व्यवसाय सुविधा प्रदान करना, प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में महिला को शिक्षक के रूप में प्राथमिकता प्रदान करना आदि अनेक विषय शामिल किये। सामाजिक, आर्थिक स्तर में सुधार से लेकर आरक्षण देने जैसे राजनीतिक विषयों ने भारतीय राजनीति में महिलाओं के अस्तित्व को एक अलग पहचान प्रदान की है।

यद्यपि इनका मतदाता के रूप में प्रतिशत भले ही बढ़ा हो, परन्तु इनका राष्ट्रीय संसद में इनका

प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत से अधिक कभी नही रहा। सरकारी प्रशासनिक ढांचे में इनका अल्प प्रतिनिधित्व भारतीय राजनीति के समक्ष एक गहन समस्या है। महिलाओं के लिए सकारात्मक स्तर पर 73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन ने एक तिहाई स्थान आरक्षित करके एक सकारात्मक कदम उठाया है जिसे 16 राज्यों में बढाकर 50 प्रतिशत कर दिया है, परन्तु संसद में महिला आरक्षण मिलना स्वयं एक भारतीय राजनीति में विवाद का विषय बना हुआ है।

नवीनतम, 2018 में हुए राज्य विधान सभा चुनाव में हालांकि महिला मतदाताओं का प्रतिशत सकारात्मक रूप से उच्च रहा है जो राजस्थान में पुरुषों के 73.80 प्रतिशत की तुलना में 74.66 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 74.03 प्रतिशत जो पिछले चुनाव में 70.11 प्रतिशत था। महिलाओं की भागीदारी तथा उनके विकास को राजनीतिक गलियारों में होने वाले वाद–विवाद ने संचार के माध्यम से एक मुख्य विषय बना दिया है, जिसने न केवल शहरी अपितु ग्रामीण महिलाओं को भी अछूता नहीं रखा। इसके पश्चात भी महिलाओं का चुनाव में प्रतिनिधित्व कभी भी 10 प्रतिशत से अधिक नही हुआ, जो स्वयं में भारतीय लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है जिससे भविष्य में राजनीतिक दलों को निपटना है। इनकी इस अल्प प्रतिनिधित्वता का कारण महिलाओं के प्रति होने वाली लैंगिक हिंसा, शोषण, अज्ञानता में हुई दिनोदिन बढ़ोतरी है जिसे नियंत्रित करना आवश्यक है। इसके अलावा राजनीतिक दलों को भी बिना किसी व्यक्तिगत लाभ के महिलाओं को अपने संगठन में समान स्थान देने क लिए विशिष्ट प्रयास करने होंगे तभी यह स्वतंत्र रूप से राजनीति में सकारात्मक भागीदार बन सकेंगी। आरक्षण जैसा विषय, जो स्थानीय स्तर पर इनके विकास में विशिष्ट कदम साबित हुआ है, यदि सम्पूर्ण भारतीय राजनीति में भी लागू किया जाता है तो महिलाओं को राष्ट्रीय पहचान दिलाने तथा विकास की धारा में उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

♦♦♦♦♦

8

चुनावी लोकतंत्र में महिलाओं का समावेशीकरणः भारत एवं अफ्रीका

राम किशोर
शोधार्थी, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

विश्व के अधिकतम देश ऐसे है जहाँ जनप्रतिनिधियों को चुनने के लिए चुनाव होते है, परन्तु अनेक ऐसे भी देश हैं जो लोकतांत्रिक नही है परन्तु वहाँ भी चुनाव होते है। चुनाव का अर्थ है अपने मताधिकार का उपयोग करके अपने प्रतिनिधि चुनना और उन्हें सत्ता सौंपना है। आज की सभी लोकतांत्रिक सरकारें, जनता द्वारा चुनावो के माध्यम से ही चुनी जाती है। मताधिकार चुनावी लोकतंत्र द्वारा चुनावो के माध्यम से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार मताधिकार चुनावी लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूल आधार है।

चुनावी लोकतंत्र, उस लोकतांत्रिक सिंद्धात की अभिव्यक्ति और क्रियान्वयन का व्यावहारिक स्वरूप है जिसे लोकप्रिय संप्रभुता कहा जाता है। जो सबको प्रभावित करता है उसका निर्णय सबके द्वारा ही किया जाना चाहिए। चुनावी लोकतंत्र की प्रतिनिधि मूलक संस्थाओं, जैसे संसद, राज्य विधान मंडलों, नगर पालिकाओं और गॉव पंचायतों आदि के गठन में जाति, धर्म, लिंग, निवास, शैक्षिक–स्तर और आर्थिक हैसियत के आधार पर भेदभाव किए बगैर जनता का प्रतिनिधित्व, चुनाव तथा शासन व्यवस्था स्थापित करने में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने में भी चुनावी लोकतंत्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

विश्व का सबसे बड़े लोकतंत्र का नागरिक होने के नाते कुछ स्पष्ट प्रश्न दिमाग में आते हैं कि क्या चुनावी लोकतंत्र पर्याप्त लोकतंत्र है? क्या निर्वाचित सरकार वास्तव में लोगों के जनादेश का प्रतिनिधित्व करती है? क्या चुनावी लोकतंत्र में विश्व की आधी आबादी कही जाने वाली महिलाओं को अपने–अपने देशों में पूर्ण रूप से राजनीतिक सहभागिता का अवसर मिलता है?

इस लेख के माध्यम से यह पता करने की कोशिश की गई है कि भारत एवं अफ्रीकी राज्यों में चुनावी लोकतंत्र के माध्यम से महिलाओं की राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक एवं सामाजिक स्थिति में क्या–क्या परिवर्तन आये है? अफ्रीका अनेक छोटे–बड़े देशो का महाद्वीप है। वर्तमान में इस महाद्वीप में 54 देश है जिसमें 48 देश मुख्य भूमि पर हैं, तथा 6 द्वीप देश है अफ्रीका महाद्वीप में लगभग 125 करोड़ लोग निवास करते है। जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ था, उस समय अफ्रीकी महाद्वीप में केवल चार देश स्वतंत्र थे।

अफ्रीकी राजनीति में सबसे आकर्षक घटनाक्रम 1990 के दशक के मध्य से शुरू हुआ जब अफ्रीकी देशों मे चुनावी लोकतंत्र के माध्यम से महिलाओं की राजनीति में राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि से शुरू हुई। अफ्रीकी महिलाएं स्थानीय सरकार से लेकर विधानसभाओं और यहां तक कि संसदीय

संस्थाओं जैसे कार्यपालिका, विधानपालिका एवं न्यायापालिका जैसी कई तरह की संस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज, अफ्रीका विश्व स्तर पर महिलाओं के संसदीय प्रतिनिधित्व में अग्रणी है। रवांडा ने 2003 में संसद में दुनिया की महिलाओं के उच्चतम अनुपात का दावा किया था और आज रवांडा की महिलाएं देश की विधानपालिका में 64 प्रतिशत हैं।

सेनेगल, सेशेल्स और दक्षिण अफ्रीका में 40 प्रतिशत से अधिक संसदीय सीटें महिलाओं के पास हैं, जबकि मोजाम्बिक, अंगोला, तंजानिया और युगांडा में 35 प्रतिशत से अधिक सीटों पर महिलाओं का अधिकार है। इसके विपरीत, भारतीय महिलाओं का प्रतिशत भारतीय संस्थाओ में अफ्रीकी देशों की महिलाओ से कम प्रतिशत है। 2005 में अफ्रीका में एलेन जॉनसन–सिर्लेफ चुनी गईं महिला राष्ट्रपति बनीं और हाल ही में जॉयस बंदा ने मलावी में राष्ट्रपति का पदभार संभाला। 1993 के बाद से अफ्रीका में नौ महिला प्रधान मंत्री हैं, जिसमें मोजाम्बिक में लुइसा डियोगो भी शामिल हैं, जिन्होंने छह साल तक सेवा की। 1975 से युगांडा में वांडिरा स्पेसीओसा काजीब्वे जैसी 12 महिला उपाध्यक्ष रहीं हैं। वर्तमान में मॉरीशस, जिम्बाब्वे, गाम्बिया और जिबूती में महिला उपाध्यक्ष हैं। अफ्रीकी महिलाएं रक्षा एवं विदेशी मामलों में प्रमुख मंत्री पद संभाल रही हैं, जो कि अतीत मे केवल महिलाएं शिक्षा, सामुदायिक विकास, खेल और युवाओं के तथाकथित 'नरम' मंत्रालयों में मुख्य रूप से मंत्री पद रखती थी।

अफ्रीकी संघ की संसदीय सीटों का 50 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है। स्थानीय स्तर पर भी, अफ्रीकी महिलाएं लेसोथो और सेशेल्स में लगभग 60 प्रतिशत स्थानीय सरकारी पदों पर हैं, नामीबिया में स्थानीय परिषदों या नगरपालिका विधानसभाओं के 43 प्रतिशत सदस्य महिलाएं हैं, और मॉरीशस, मोजाम्बिक, तंजानिया में स्थानीय सरकारी पदों के एक तिहाई से अधिक हैं। बोत्सवाना, केप वर्डे, लेसोथो, दक्षिण अफ्रीका और सेनेगल जैसे देशों में पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाएं मतदान करती हैं।

अफ्रीकी राजनीतिक क्षेत्र में इन परिवर्तनों को अग्रलिखित परस्पर संबंधित कारकों द्वारा समझा जा सकता है जैसे अफ्रीका में संघर्ष की गिरावट, लोकतंत्र एवं चुनावी लोकतंत्र का विस्तार, नागरिक स्वतंत्रता का विस्तार, संयुक्त राष्ट्र एजेंसियाँ, क्षेत्रीय संगठन, वित्तिय दाताओं एवं बाहरी अंतर्राष्ट्रीय अभिनेताओं का दबाव जो राज्य को प्रभावित करते हैं।

भारत की लगभग आधी आबादी महिला होने बावजूद उन्हें 33 प्रतिशत आरक्षण दिलाने वाला महिला आरक्षण विधेयक अभी भी लटका हुआ है। सवाल यह उठता है कि कुल मतदाताओं का 48 प्रतिशत होने तथा मतदान की ताकत रखने वाली महिलाओं को आजादी के 70 वर्षों बाद भी आरक्षण की आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि हमारे देश की महिलाएँ आज किस मानसिकता के साथ वोट देती हैं?

जिस देश में आज से 25 वर्ष पूर्व एक महिला प्रधानमंत्री बनकर 17–18 वर्षों तक एकछत्र राज कर चुकी हो, जहाँ आज भी सत्तारूढ़ दल की मुखिया भी महिला हो, और जहाँ के लोकतंत्र ने देश के सबसे बड़े प्रदेश की मुख्यमंत्री के रूप में एक दलित महिला का चुनाव किया हो, वहाँ आज भी महिलाएँ अपने निजी स्वविवेक से वोट नहीं डालतीं। वोट देने के पहले न तो वे सामान्यतया किसी प्रकार का

विचार करती हैं और न ही उन्हें किसी तरह के सोच–विचार की स्वतंत्रता है। सिर पर कलश रखकर शोभायात्राओं में शामिल होने, महाराज की कथा में भागवत सुनने और झुँड में इकट्ठी होकर गणगौर के गीत गाने वालीं महिलाओं के लिए यदि वोट देना मात्र एक पारिवारिक दायित्व के निर्वहन से ज्यादा कुछ नहीं है तो इस राजनीति के नक्कारखाने में कुर्सी के लिए मचे शोर–शराबे में महिलाओं के आरक्षण की दया की गुहार आखिर सुनी ही कैसे जा सकती है?

आज महिलाओं को चाहिए कि वे अपने लिए कुछ ऐसे सार्थक प्रयास करें ताकि इस चुनावी लोकतांत्रिक आंदोलन में वे अपनी भूमिका का सचाई से निर्वाह कर सकें। वास्तव में राजनीतिक दलों की कमोबेश एक जैसी वादाखिलाफी, जनप्रतिनिधियों के एक जैसे दुर्व्यवहार ने चुनावों के प्रति आम मतदाता का उत्साह कम ही किया है, लेकिन व्यवस्था बदलने के लिए हमारे पास कोई ऐसा हथियार भी नहीं जिसके प्रयोग से हम इस तरह की परेशानियों से मुक्ति पा सकते हों। इसीलिए लोकतंत्र में हमें मतदान के हमारे संविधान–प्रदत्त अधिकार के प्रति ज्यादा जागरूक होना पड़ेगा।

♦♦♦♦♦

9

क्या भारत में चुनावी लोकतंत्र वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक है?

राहुल शर्मा
एम. ए, राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस प्रश्न का उत्तर इस संदर्भ में स्पष्ट रूप से दिया जा सकता है कि भारत में चुनावी माहौल के दौरान राजनैतिक दलों द्वारा चुनाव जीतने के लिए जो त्वरित रणनीतियाँ अपनाई जाती है उनमे जातीय, वर्गीय, संगठन, संप्रदाय, और धर्म आदि के आधार पर मतों का ध्रुवीकरण व विभाजन के प्रयास किये जाते है। जिससे भारत की अद्‌भुत सासंकृतिक विविधता वाली सामाजिक संरचना को अघात पहुचता है और कभी–कभी लोगों के मन में संदेह, मतभेद, व अलगाव की भावना भी पैदा होने लगती है। जो हमारे देश में लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करने का काम करती है।

मेरा अपना यह मत है कि विचार, किसी का भी हो या किसी भी विचारधारा का हो, वह सदैव स्वतंत्र होता है जिसे किसी पर थोपा नही जा सकता, परन्तु कई बार राजनैतिक दल अपनी विचारधारा को अन्य लोगों पर थोपने के लिए भरपूर प्रयास करते है जिसके लिए वे मतदाताओं में एक सहमति का निर्माण भी करते है जिसके लिए वे आंकड़ों व तथ्यों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं जिससे की उनके हितों की अधिकतम पूर्ति हो सके। कई बार एक बहुत बड़ा सवाल हमारे मन में भी उठता है कि हम एक लोकतांत्रिक देश हैं, हमारे पास एक संविधान है, और हमारे पास आवधिक चुनाव भी हैं, लेकिन क्या यह हमें बेहतर प्रशासन दे रहा है?

इसका उत्तर भी काफी हद तक स्पष्ट ही है कि क्योंकि आजकल पंचायत अध्यक्ष का चुनाव, विधायक के चुनाव के बराबर हो गया है जिसमे अब उम्मीदवार की इमानदारी को कोई ख़ास महत्त्व देखने को नही मिल रहा है जबकि राजैतिक दलों द्वारा टिकटों का बटवारा किस आधार पर होता है उसके बारे में आप और हम सभी जानते है। करोड़ों रुपये दांव पर लगाये जाते हैं इसलिए जनता के बीच का कोई व्यक्ति जो शिक्षित, विवेकशील, योग्य होने के बावजूद यदि किसी कारणवश गरीब है तो वह चुनाव को लड़ ही नही सकता है। और देखने वाली बात यह भी है कि जितने दिन तक का चुनाव होता है उतने दिन तक पीछे चलने वालों और प्रचार करने वालों की भीड़ की भी व्यवस्था करनी पड़ती है।

कुछ लोगों को अपने साथ जिंदाबाद के नारे लगाने के लिये लोगों को पांच सौ रूपये मजदूरी भी दी जाती है। इसे बिकाऊ मतदाता न कहे तो क्या कहें? जिसके चेहरे पर इसलिए मुस्कान आ जाती है क्योंकि इसे चुनावों में रोजाना कम से कम दो शराब की बोतलें और तीन वक्त नाश्ता, खाना, बीड़ी, सिगरेट, व गुटखे की पुड़िया के साथ–साथ नकद भी मिलता है। चुनाव की घोषणा होते ही सभी उम्मीदवार खुदको गरीबों का हितेषी दिखाने में लग जाते है और फटा मैला कुर्ता और यहाँ तक कि टूटी हुई चप्पलें भी पहनने को तैयार हो जाते है फटे तंगहाल गरीब औरत को प्रणाम भी करने लगते

है। तो स्पष्ट है कि यह सब सिर्फ नाटक है और कुछ नहीं। तो समझ जाइये चुनाव के भीतर की तस्वीर कैसी है और बहार की कैसी।

हमारे देश में चुनावी जागरूकताः

अच्छी बात तो यह है की 2014 के लोकसभा चुनाव के बाद से जितने भी राज्यों में जिस भी बूथ पर 65ः से अधिक मतदान हुए उनमे शिक्षित वर्ग द्वारा अपने वोट की शक्ति के प्रति जागरूक होने के कारण ही संभव हुए है क्योंकि आज भी हमारे देश में शिक्षित युवाओं में कई ऐसे लोग है जो जिनका चुनाव के प्रति रवैया उदासीन ही रहता है। वर्तमान में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ व राजस्थान विधानसभा चुनावों में नोटा के प्रयोग ने जिस प्रकार रोचक परिणाम दिए इससे साफ़ पता चलता है की हमारे देश में वोट के महत्व को अब धीरे–धीरे उचित स्थान मिलने लगा है। इसके साथ ही मीडिया और सामाजिक संगठनों के कामकाज को देखें तो यह बहुत हद तक हमारे लोकतंत्र की रक्षा में सहायक सिद्ध हुए है क्योंकि यह पूर्णरूप से स्वतंत्र होकर या तो सरकार की आलोचना करते है या फिर खुलकर समर्थन।

चुनावी पर्यटन उद्योगः

हमारे देश के चुनावों ने पर्यटन उद्योग को भी एक नया आयाम दे दिया है क्योंकि अब भारत के चुनावों में, पर्यटन की एक नयी विद्या आकार ले रही है जिसे समझने के लिए भारतीय चुनाव को फोलो करने वाले विदेशी पत्रकार भी व्यायवसायिक जोश एवं उत्सावह के साथ एकत्र होकर भारत में आने लगे हैं, विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के कुम्भ मेले के रूप में विख्यात पर्यटन उद्योग के प्रबंधक एवं कार्यकर्ता विदेशी पर्यटकों को चुनाव पर आधारित होलीडे पैकेज भी देने लगे हैं।

विदेश नीति में भी परिवर्तनः

भारतीय लोकसभा चुनावों में एक ख़ास बात यह है की इनसे हमारी विदेश नीति में भी परिवर्तन होता है विदेश नीति में हमारे मजबूत राष्ट्रीय हित, पड़ोसी देशों के साथ अच्छे संबंध, सामरिक स्वायत्तता, प्रमुख महाशक्तियों एवं उभरती महाशक्तियों के साथ सकारात्मक भागीदारी पर आधारित विदेश नीति का अनुसरण किया जाता है, कानून पर आधारित अंतरराष्ट्रीय सीमा को बढ़ावा दिया जाता है और नए सिद्धांतों व नेतृत्व के द्वारा लोकतंत्र के माध्यम से देश के विकास के विकल्पों का विस्ताार भी किया जाता है।

चुनाव आयोगः

सम्पूर्ण भारत में चुनाव आयोजन की तैयारियाँ किसी कड़ी चुनौती से कम नहीं। भारत के चुनाव आयोग द्वारा जिस प्रकार पहाड़ी क्षत्रों में, नक्सली क्षेत्रों में, उत्तर–पूर्वी (दूरवर्ती राज्यों) क्षेत्रों में निष्पक्ष चुनावों का आयोजन किया जाता है और जिस प्रकार भारतीय चुनावों में जिस अमिट स्याही का प्रयोग होता है वह देखा जाये तो लोकतांत्रिक सपनों का आधार है। जिसे दक्षिण भारत के मैसूर शहर में

तैयार किया जाता हैए और इसकी भारी पैमाने पर मांग कई लोकतंत्र स्थापित देशों द्वारा की जा रही है। भारत में अमिट स्याही, इलैक्ट्रानिक वोटिंग मशीन या चुनाव कार्य के संचालन में कार्मिकों को प्रशिक्षण देने के लिए पोलिंग अधिकारी की व्यवस्था की जाती है। जिसका प्रबंधन अपने आपमें अद्भुत व बेजोड़ है।

स्वर्ण आरक्षण की भूमिकाः

वर्तमान में स्वर्ण आरक्षण की व्यवस्था को जिस प्रकार संविधान संशोधन (अनुच्छेद 15 और 16 में) के माध्यम द्वारा लोकसभा चुनाव से ठीक पहले लागू करने का फैसला लिया गया। उससे इसके समय–बिंदु पर प्रश्न तो उठेंगे ही साथ ही इस निर्णय को भी चुनावी राजनीति से ही प्रेरित समझा जा रहा है। हालाँकि यह बहुत पहले हो जाना चाहिये था। इसमें सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए 10 : आरक्षण मौजूदा 49.5 : कोटे के अलावा होगा। जिसमे 8 लाख रु से कम सालाना आय, 5 एकड़ या उससे कम कृषि जमीन, ग्रामीण क्षेत्रों में 200 गज जमीन वालों को, और शहरों में 100 गज जमीन वालों को इसका लाभ मिलेगा।

भारत में चुनावी लोकतंत्र वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक तभी बन सकता है जब यहाँ के सभी मतदाता अपने वोट के महत्व को समझते हो। और अपने वोट के महत्व को समझने के लिए कोई विशेष तकनीकी ज्ञान की बजाए केवल यदि हमारे संविधान की प्रस्तावना को ही यदि भली भांति समझ लिया जाये तो पर्याप्त होगा।

भारतीय लोकतंत्र में अभी कई कमियाँ है लेकिन इनसब के बावजूद भारत में जिस प्रकार से 16 बार सत्ता का हस्तांतरण शांतिपूर्ण तरीके से हुआ है उससे यह प्रमाणित होता है कि भारत में चुनावी लोकतंत्र वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक है। क्योंकि भारत की निर्वाचित सरकार वास्तव में लोगों के जनादेश का प्रतिनिधित्व करती है इसके अतिरिक्त यहाँ पर केवल एक ही बात है जो सबसे ज्यादा गंभीर और सोचने योग्य है वह यह है कि चाहे कुछ भी हो जाये हमें अपने देश की एकता व अखंडता को क्षीण नहीं होने देना है।

♦♦♦♦♦

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-110007